ISSN: 2249-894X IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) VOLUME - 6 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2017

REVIEW OF RESEARCH

मिथिला का सांस्कृतिक इतिहास और पर्यटन की संभावनाएँ

राजेश कुमार
बी० कॉम०, एम० कॉम०,
शोध छात्र , ल0 ना0 मि0 विश्वद्यिालय, दरभंगा.

भूमिका

मिथिला प्राचीन भारत में एक राज्य था। वर्तमान में मिथिला एक सांस्कृतिक क्षेत्र है, जिसके अंतर्गत बिहार के तिरहुत, दरभंगा, मुंगेर, कोसी, पूर्णिया और भागलपुर प्रमंडल तथा झारखंड के संथाल परगाना प्रमंडल के साथ–साथ नेपाल के तराई क्षेत्र के कुछ भाग भी शामिल है। मिथिला अपने बौद्धिक परम्परा के लिए भारत और भारत के बाहर जानी जाती रही है। इस इलाके की मुख्य भाषा मैथिली है। इस प्रदेश की प्राचीन राजधानी, जनकपुर में थी। मिथिला पुरातन काल से ही दर्शन, ज्ञान, शिक्षा और धर्म का केन्द्र रहा है।

मिथिला का इतिहास अति प्राचीन है। मिथिला आर्य काल से पूर्व अपने आस्तित्व में था। आर्यो के मिथिला आने से पूर्व यहाँ तीन जाति प्रबल रूप से विद्यमान था। जो दुसाध, मल्लाह और अहीर (अहीर अथवा यादव) था। अग्नि वैश्वानर के संग पंचाल से आए आर्य पयस्वनी नदी सब के बहुलता के कारण इस भूखण्ड का नाम तीरभुक्ति (तिरहूत) दिया गया इसके बाद 'मिथि' राजा के उदय के कारण इसका नाम मिथिला पड़ा।

इस सुजलां सुफलां भूमि के आदिम शासक जनक वंश के थे। इस वंश के आध्यात्मिक रूचि के कारण मिथिला को आर्यावत का सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया और मिथिला की गिनती भारत के एक प्रसिद्ध जनपद में होने लगा। इस परिवेश में याज्ञवलक्य बहुत प्रसिद्ध ऋषि हुए जिनका ब्राह्मण ग्रन्थ (शतपथ ब्राह्मण, गोपथ बाह्मण, ऐतरेय और तैतरेय ब्राह्मण) में प्रमुख योगदान रहा।

इक्ष्वाकु वंश के प्रसिद्ध राजकुमार रामचन्द्र का विवाह विदेह (मिथिला का एक नाम विदेह भी था) के राजकुमारी सीता से हुआ। जनक वंश के अवसान के बाद, लिच्छवी और तिब्बती किरात शासन से मिथिला को कुछ महत्त्व का वस्तु प्राप्त नहीं हो सका। इसके उपरान्त छोट.छोटे सामन्ती राजाओं का उदय हुआ। मिथिला बंगाल के सेन और पाल वंश के शासन में शोषित ही होता रहा। पााल वंश का अवशेष कुछ कलात्मक मूर्तियाँ अभी भी शेष है।

कर्णाट वंश के शासन काल में मिथिला को सुव्यवस्था प्रदान किया गया। इस काल में विद्वानों और पंडितों को संरक्षण प्राप्त हुआ जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण ज्योतिरीश्वर द्वारा 'वर्णरत्नाकार' जैसे अग्रगण्य ग्रन्थ और 'धूर्त समागम' जैसा नाटक है।

कर्णाट वंश के बाद ओइनवार वंश का उदय हुआ। विश्वकवि विद्यापति इसी काल के कवि थे इस काल के प्रबल प्रतापी राजा शिव सिंह हुए मिथिला राज्य के मात्र तीन वर्षो के शासनकाल में ही इन्होने भारत के इतिहास में अपना एवं अपने राज्य का नाम अमर कर दिया। कर्णाट वंश के प्रथम राजा नान्यदेव थे। कर्णाट वंश के तीन महामंत्री श्रीधरदास, चण्डेश्वर महथा और अभियकर बड़े प्रख्यात हुए और मिथिला को सँवारने में प्रमुख योगदान दिए।

खण्डवा कुल, जिसका उदय बादशाह अकबर के सनद से हुआ वो था 'दरभंगा राज'। इस वंश के सबसे प्रतापी राजा लक्ष्मीश्वर सिंह हुए। ये राष्ट्रवादी थे और इंगलैंड के प्रधानमंत्री ग्लेडस्टोन के विधवा से उनकी समस्त अनमोल पुस्तक संचय खरीदकर विश्व विख्यात राज लाइब्रेरी की स्थापना किए। इस वंश के दुसरे महराज कामेश्वर सिंह द्वारा भी इस लाइब्रेरी में अनमोल पुस्तकों का संकलन किया गया। इनके द्वारा कुछ दिव्य राजभवन बनाया गया जिसमें आज 'ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय' एवं 'कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्विद्यालय' चल रहा है। इनके प्रमुख योगदान में इण्डियन नेशन और आर्यावर्त जैसे विख्यात दैनिक समाचार पत्र का स्थापना है। महाराज कामेवरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय को छिहत्तर बीघा जमीन दान देकर अपना यश स्थापित किए। इनके अवसान के बाद इस वंश का क्रम समाप्त हो गया।

मिथिला का संबंध प्राचीन काल से है। श्रीमद भागवत महापुराण, वाल्मीकीय रामायण तथा विष्णु पुराण के अनुसार मिथिला का नामाकरण महाराज मिथि के नाम पर हुआ है। प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार इस सुंदरतम भू–भाग के प्रथम महाराजा सूर्यकुल में उत्पन्न महाराज मनु के पौत्र महाराज इक्ष्वाकु के पुत्र महाराज निमि थे। महाराज निमि के पुत्र मिथि हुए। जिनके नाम पर इस क्षेत्र का नाम मिथिला पड़ा। ''वाल्मीकीय रामायण'', विष्णु पुराण, तथा ''श्रीमद भागवत'' महापुराण के अनुसार मिथिला का नाम महाराज मिथि के नाम से ही उत्पन्न है। प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार, इस क्षेत्र के प्रथम राजा सूर्यकुल उत्पन्न महाराज मनु के पौत्र इक्ष्वाकु के पुत्र निमि थे। महाराज निमि के पुत्र महाराज मिथि हुए। महाराज निमि एक बार अपने कुल गुरू एवं पुरोहित महर्षि वशिष्ट से आज्ञा लिये बिना यज्ञ करवाने हेतु महर्षि गौतम को ऋत्विज वरण किए, जिससे महर्षि वशिष्ट कुपित हो गये तथा श्राप दे दिए। अन्तोगत्वा महाराज निमि महर्षि वशिष्ट के शाप से मृत्यु को प्राप्त हुए। तदुपरान्त सभी देवता एवं महान ऋषिगणों ने एकत्र होकर उनकी आत्मा से पुनः मनुष्य रूप में प्रकट होने की प्रार्थना किए, लेकिन उन सबों का अनुरोध स्वीकार नहीं हुआ। ऋषियों ने उन्हें वरदान दिया कि उस काल से सतत उनका निवास मानव–निमेष पर रहेगा। इसके पश्चात उनके शरीर से उनकी समान सुयोग्य पुत्र उन्पन्न करने की इच्छा से उन महात्माओं ने उनके शरीर को मथानी में रखकर उसका मंथन किया। उन सबों को अपने प्रयत्नों में सफलता मिली, और उस मंथन के फलस्वरूप ''मिथि'' नाम के उनके एक पुत्र का वहाँ आविर्भाव हुआ, जो अपने पिता के राज्य का उतराधिकारी बना उसी मिथि के नाम पर उसके द्वारा शासित भूमि का नाम ''मिथिला'' पड़ा।

मिथिला की चौहद्दी

अति प्राचीन काल में पुराणों के लेखानुसार मिथिला के अन्तर्गत वर्तमान नेपाल राज्य की तराई भूमि का विशेष अंश सन्निविष्ट था। वाल्मीकीय रामायण तथा विष्णु, वायु, स्कन्द, एवं श्रीमद्भागवत पुराणों में मिथिला की सीमाओं का उल्लेख नहीं है। परन्तु गंगा के उत्तर के भूभाग में मिथिला एवं वैशाली नाम के दो राज्य थे, इसका पता वाल्मीकीय रामायण और मार्कण्डेय, विष्णु तथा अन्य पुराणों के अध्ययन से लगता है। उन दोनों राज्यों के बीच सीमा क्या और कहां थी, इसका वर्णन उन ग्रन्थों में नहीं है।

तीरभुक्ति अथवा तीरहुति या तिरहुत मिथिला का परवर्ती नाम है। मिथिला खण्ड वृहद् विषणुपुराण का एक भाग माना जााता है। उसके अनुसार तीरभुक्ति के पूर्व में कौशिकी (कोशी), पश्चिम में शालग्रामी (नारायणी, गंडकी अथवा सदानीरा), दक्षिण में गंगा, और उत्तर में पर्वत–राज हिमालय का अरण्य–प्रदेश सुशोभित था। पूर्वोक्त सीमाओं के बीच वर्तमान दरभंगा, मुजफ्फरपुर, और चम्पारण जिलों के सम्पूर्ण भू–भाग एवं मुंगेर, भागलपुर तथा पूर्णिया जिलों के अंश तथा नेपाल की तराई भूमि आ जाती है। बृहद् विष्णुपुराण के मिथिला खण्ड में मिथिला (तीरभुक्ति) की सीमाओं के विषय में निम्नांकित रूप में वर्णन किया गया है :–

''गंगाहिमवतोर्मध्ये नदी पंचदशान्तरे।
तैरभुक्तिरिति ख्यातो देशः परमपावनः।।
कौशिकीन्तु समारभ्य गण्डकीमाधिगम्य वै।
योजनानि चतुर्विंशत् व्यायामः परिकीर्तितः।।
गंगाप्रवाहमारभ्य यावद्धैमवतं वनम्।
विस्तारः शोडशः प्राक्तो देशस्य कुलनन्दन।।
मिथिला नाम नगरी नामस्ते लोकविश्रुत।
पंचभिः कारणैः पुण्या विख्याता जगतीत्रये ।।

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार मिथिला जनपद की लम्बाई 24 योजन अथवा 192 मील तथा चौड़ाई 16 योजन अथवा 128 मील था, और इसके उत्तर पर्वतराज हिमवान का आरण्य प्रदेश, दक्षिण में हिमवत्–प्रभवा पुण्यसलिला गंगा नदी, पूर्व में परम चंचला कोशी नदी की वेगवती धारा, और पशिचम में गण्डक नदी है। गण्डक नदी को नारायणी एवं सदानीरा भी कहा जाता है, जो हाजीपुर के निकट बिहार राज्य की राजधानी पटना (प्राचीन पाटलीपुत्र) के सामने गंगा से मिलती है। यह नारायणी गंडक, बूढ़ी गंडक से भिन्न है। वैदिक एवं ब्राह्मण–काल में नारायणी गंडक का नाम सदानीरा था। पर पाश्चात्य विद्वान् पार्जीटियर एवं ओल्डेन्बग इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मतानुसार सदानीरा सप्ती नदी का पुरातन नाम है। सम्प्रति नारायणी गण्डक को जनता शालग्रामी नाम से भी पुकारती हैय क्योंकि उसके उद्गम–स्थान से ही विष्णु की पावन प्राकृतिक प्रस्तर मूर्ति शालिग्राम की प्राप्ति होती है।

''गण्डकीतीरमारभ्य चम्पारण्यान्तकं शिवे।
विदेहभूः समाख्याता तैरभुक्तयभिधः स तु।।''

मिथिला के प्रख्यात विद्वान् कविवर पं० चन्दा झा ने मिथिला व तीरहुति अथवा तिरहुत की सीमाओं का अंकन नीचे लिखे छन्द में किया है :–

''गंगा वहथि जनकि दक्षिण दिशि पूर्व कोशिकी धारा।
पश्चिम वहथि गंडकी उत्तर हिमवत बल विस्तारा।।
कमला, त्रियुगा, अमृता, धेमुरा, वागमती कृत सारा।
मध्य वहथि लक्ष्मणा प्रभृति से मिथिला विद्यागारा।।''[1]

विख्यात विद्वान् डा० गंगानाथ झा ने मुगल सम्राट अकबर द्वारा खंडवाला कुल के दरभंगा महराज के पूर्वज महेश ठाकुर को मिथिला–राज्य प्रदान के सम्बन्ध में उर्दू अक्षरों में अंकित प्रमाण–पत्र (सनद) से मिथिला की सीमाओं के विषय में निम्नलिखित पद उद्धृत किया है :–

''अज़ कोश ता गोस़ अज़ गंग ता संग।''

वहाँ ''कोष'' शब्द कोशी का बोधक है तथा 'गोस' गण्डकी का। फारसी में 'संग' अथवा संग्ड. का अर्थ पत्थर (पर्वत) होता है, यथा संगमरमर। इससे यह स्पष्ट होता है कि सम्राट अकबर ने मिथिला का जो राज्य दरभंगा महाराजा के आदि. पूर्वज महेश ठकुर को दिया था, उसका विस्तार कोशी से गण्डकी तक, तथा गंगा से नगराज हिमालय के वन्य प्रदेश तक था।

मिथिला की चौहद्दी के विषय में वीर लोरिक ने जो सीमा दिखाई है वो निम्न है :–

पूरब जे पुरनियाँ पुजलौं, पश्चिम रे बिहार।
उत्तर जे नेपाल पुजलिअई, दक्षिण झारिखंड।।
रौता जे तिलकेश्वर पुजलौं झाड़ि बैजनाथ।
भोरे उठिक गोर लगलिअई, दिनकर दीनानाथ।।

मिथिला की सीमाओं के अन्दर सम्पूर्ण दरभंगा, मुजफ्फरपुर, एवं चम्पारण जिलों तथा भागलपरु, पूर्णियाँ और मुंगेर जिलों के कुछ अंश की भूमि के साथ तराई नेपाल एवं निचली हिमालयं पर्वत–श्रेणी भी थी (दरभंगा जिला गजेटियर, पृ० 152; श्यामनारायण सिंहः हिस्ट्री ऑफ तिरहुत, पृ० 2–3; रेप्सनः एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ० 174–75), इसका विस्तार 25^{व} 28' और 26^{व} 52, लेटीच्युड एवं 84^{व} 56' और 86^{व} 46' लोंगीच्युड (अक्षांश रेखाओं) के बीच है (इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, 8, पृ० 187; दरभंगा जिला गजेटियर, पृ० 152)।

भिन्न–भिन्न काल में मिथिला राज्य के क्षेत्र में विस्तार में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। उत्तर में हिमालय के पदभाग से आरम्भ कर दक्षिण में गंगा की धारा तक, तथा पूर्व में महानन्दा से लेकर पश्चिम में गण्डकी तक मिथिला का क्षेत्रफल लगभग 25,000 वर्ग मील होता है ।

एच० सी० रायचौधरी विदेह–राज्य मिथिला को उत्तर बिहार के वर्तमान तीरहुति अथवा तिरहुत के भीतर ही सीमित मानते हैं। कीथ एवं मैक्डोनेल के विचार में मिथिला को कोशल–राज्य से पृथक् करने वाली नदी सदानीरा (वर्तमान गण्डक नदी जो नेपाल से आरम्भ होकर पटना के सामने गंगा से मिलती है) थी। पर ओल्डेनबर्ग सदानीरा एवं गण्डक में भेद बताते हैं, तथा पार्जीटियर सदानीरा को राप्ती नदी मानते हैं।

मिथिला राज्य हुएन्–त्संग द्वारा वर्णित पंच भारत (फाइव इण्डियाज) में से एक था। वाल्मीकीय रामायण आदि प्राचीन ग्रंथों में इस जनपद के लिए 'मिथिला' नाम ही प्रयुक्त हुआ है, तीरहुत अथवा तिरहुत नहीं।

मिथिला का परवर्ती नाम तीरहुत अथवा तिरहुत

मिथिला का कालांतर नाम 'तीरहुत' वा 'तिरहुत' है। सम्भवतः यह शब्द 'तीरभुक्ति' का अपभ्रंश है। 'तीरभुक्ति' का अर्थ होता है नदियों के तट पर निवास करनेवाला। मिथिला के निवासियों के साथ यह अर्थ चरितार्थ होता है; क्योंकि यहाँ छोटी–बड़ी नदियों की भरमार है, जिसके कारण प्रतिवर्ष बाढ़ के प्रकोप से जनता पीड़ित होती रहती है। 'बृहद् विष्णु पुराण' के 'मिथिला खण्ड' में वहाँ बहनेवाली अनेक नदियों के नाम दिये गये हैं जो नीचे उद्धृत है :–

''कौशिकी कमला चैव तथा बिल्ववती मता ।
यमुना चेति विख्याता भूपसी गैरिका तथा ।।

जलाधिका दुग्ध्वती तथा व्याघ्रमती मता ।
विरजा मण्डना चैव तथैवेच्छामतीति च ।।

लक्ष्मणा वाग्वती ख्याता गण्डकीति ततः परा ।
इति पूर्वक्रमात्प्रोक्तं न दीनामानि दर्शयन् ।।

त्रियुगा कमला चेति गण्डकी अधिवारिणी ।
धुम्रा घोशवती चैव वनघोशा च लक्ष्मणा ।।

कौशिकीति नव प्रोक्ताः सीतासख्यः प्रकीर्तिताः ।
सखीरूपेण क्रीड़न्ति जनकस्य गृहे सदा ।।

अकुंक्षी वर्चनी चैव जंघाजीवायिका तथा ।
इत्यधा बहवः सन्ति नद्यो हिमवतोद्भवाः ।।''

उपर्युक्त सभी नदियां हिमालय पर्वतमाला से निकलकर सम्पूर्ण तिरहुत के किसी न किसी भाग से होती हुई बहती है।

'बृहद् विष्णुपुराण' में मिथिला के अधोअंकित द्वादश नाम अंकित किये गये है, जिनमें से तीरभुक्ति भी एक है, यथा :–

''मिथिला तीरभुक्तिश्च वैदेही नेमिकानम् ।
ज्ञानशीलं कृपापीठं स्वर्णलांगलपद्धति ।।

जानकीजन्मभूमिश्च निरपेक्षा विकल्मशा ।
रामानन्द कटी वि□वभावनी नित्यमंगला ।।

सदा भुवनसम्पन्नो नदीतीरेशु संस्थितः ।
तीरेशुभुक्तियोगेन तैरभुक्तिरिति स्मृतः ।।''

उपर्युक्त 'बृहद् विष्णुपुराण', मिथिला माहात्म्य, द्वितीय सर्ग के श्लोकांक–5 में 'तैरभुक्ति' नाम आया है, यथा– ''गंगाहिमवतोर्मध्ये नदी पंच दशान्तरे। तैराुक्तिरिति ख्यातो देशः परमपावनः।।'' परन्तु रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में विदेह–कुल के नरेशों की राजधानी अथवा उनके प्रदेश का नाम तीरभुक्ति वा जनकपुर नहीं अंकित किया गया है। सर्वत्र मिथिला के नाम से ही उसका वर्णन किया गया है। अतः मिथिला जनपद का तीभुक्ति अथवा तीरहुत वा तिरहुत नाम पीछे का प्रतीत होता है। मिथिला में प्रवाहित अनेक नदियों के तीरों पर यज्ञाग्नि के अहर्निशि प्रज्वलन एवं आहुति के कारण मिथिला का नाम 'तीरहुत' पड़ा जो पीछे चलकर 'तिरहुत' में परिवर्तित हो गया।

कतिपय आधुनिक विद्वान 'त्रयहुतम्' अथवा 'त्रहुतम्' का विकृत रूप 'तिरहुत' बताते है। उनकी राय में 'त्रयहुतम्' अथवा 'तिरहुत' उस देश का नाम पड़ा, जहाँ तीन महाविख्यात यज्ञ–(1) जानकी (श्री सीता) का राजा जनक द्वारा किये गये हल कर्षण–यज्ञ के परिणामस्वरूप जन्म, (2) धनुषयज्ञ; तथा (3) महारानी उर्वीजा सीता का राम के साथ विवाह–यज्ञ, हुए थे।

वाल्मीकीय रामायण तथा श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार पुराकालिक मिथिला में दो राज्यों का पता चलता है। दोनों राज्य क्रमशः सूर्य वंशीय मनु–पुत्र इक्ष्वाकु तथा नेदिष्ट के वंशजों के द्वारा स्थापित हुए थे, जिनमें से एक था मिथिला जनपद के उत्तर–पूर्व भाग में, तथा दूसरा उसके दक्षिण–पश्चिम अंश में। उनमें प्रथम 'विदेह राज्य' तथा दूसरा 'वैशाली' के नाम से। दोनों ही राज्यों का आस्तित्व प्रागैतिहासिक था। अतः वे अति प्राचीन थे।

प्राचीन साहित्य के अध्ययन–मनन से यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि पुरातन भारतीय आर्यो के औपनिवेशिक अभियान शास्त्रजन्य सांस्कृतिक रहे हैं, शस्त्रजन्य नहीं। उनके

1. कुरूक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसेनकाः।
   एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः।।

2. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि।
   प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्य देशः प्रकीर्तितः।।

3. आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
   तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः।।

अभियानों के ढंग एवं परिणामों से उनकी हिंसक प्रकृति का परिचय नहीं मिलता है। पुराणों, बौद्ध जातकों तथा पुरातत्व सम्बन्धी अन्वेषणों से भी यह पता चलता है कि उनके सान्निध्य से वहिर्भूत मनमोदकारी एकान्त सांस्कृतिक सम्पर्क का सुरभित सुमन.सौरभ ही दशो दिशाओं को अपने ज्ञान.विज्ञान से सदा सुवासित कर रहा था। उनमें ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ.परता आदि का लेश अपवाद रूप में ही बड़ी कठिनाई से कभी देखने को मिलता था। यही कारण था कि नृपति विदेध माथव को अपने गृह.राज्य ब्रह्मवर्त से विजय.अभियान के क्रम में पूर्व दिशा में सुदूरस्थित सदानीरा तक पहुँचने में मार्ग के किसी प्रतिरोधक शासक.शक्ति के विरोध का सामना न करना पड़ा। सभी उनका मित्र ही बने रहे। उन्होनें भी अपनी अधिपत्य सदानीरा के दूसरे तट की भूमि, जिसपर उनके पूर्व किसी दूसरे का अधिकार न था, के ऊपर स्थापित कर वहाँ विदेह राजवंश की नींव दी। उन्होंने तथा

उस कुल के पश्चाद्वर्ती नरपतियों ने श्रद्धा, संलग्नता, एवं विश्व युद्ध देश तथा प्रजा.प्रेम के साथ अपनी निष्ठा, कर्मठता और अनाशक्त कार्य.कुशलता से उस भू.भाग की प्रकृति.प्रदत्त प्रतिकूलता का अतिक्रमण कर उसे अनुकूल, उर्वर एवं सर्वोपयोगी बनाया, जो आगे चलकर भैतिक उन्नति के साथ.साथ आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में संसार के सम्मुख आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। मिथिला भूमि विदेध माथव तथा उनके वंशधरों की वंशवर्तिनी बनकर भौतिक उन्नति के क्षेत्र में रत्न.प्रसवा बन गयी और साथ ही ज्ञान.विज्ञान की जननी भी। मिथिला दर्शन.ज्ञान का वह प्रभव.स्त्रोत बनी जहाँ बड़े.बड़े तत्वविद् आध्यात्म.चर्चा के हेतु विदेह जनकों की राज.सभा में सदैव पधारते रहते थे।

मिथिला जनपद

'ऋग्वेद' विश्व के पुस्तकालय का प्राचीनतम् ग्रन्थ माना जाता है। उसमें गंगा, यमुना आदि नदियों का यथास्थान उल्लेख पाया जाता है, किन्तु पर्वत.राज हिमालय का नहीं। भू.गर्भ.विज्ञानविद् मनीषियों का मत है कि प्राग्वैदिक युग में उत्तर भारत के बहुत बड़े अंश में समुद्र लहरा रहा था। हिमालय की उत्पत्ति सर्वप्रथम ज्वालामुखी के रूप में हुई। उसके द्वारा क्षारयुक्त कीचड़ आदि का विस्फोट हुआ। ज्वालामुखी के गर्भ से बहिर्भूत पदार्थो के एकत्र होने से उसके दक्षिणी भाग में दलदली भूमि का निर्माण हुआ। 'ऋग्वेद' (मंडल.10, सूक्त.136, मन्त्र.5) से ज्ञात होता है कि स्प्तसिन्धु से पूर्व के भाग में वैदिक ऋषियों को उदधि के होने का ज्ञान था। प्राकृ तिक परिवर्तनों के कारण सप्तसिन्धु के पूरब.दक्षिण की भूमि जलीय शोषण से शनैः शनैः ठोस होती गयी तथा उसमें धीरे.धीरे वृक्ष, वनस्पतियों का उद्भव होने लगा। भू.गर्भ.शास्त्र के ज्ञाता यह भी स्वीकारते हैं कि हिमालय पर्वत का वर्तमान स्वरूप क्रमशः विकसित हुआ है। उसकी उत्तंग चोटियाँ अनेक बार समुद्र.गर्भ से सहस्त्रशः वर्षो के अन्तराल में प्रकट हुई है। उन सबों की यह भी मान्यता है कि इस प्राकृतिक विकास में कम.से.कम पचास लाख वर्षो की अपेक्षा की जा सकती हैं।

भारतीय काल.गणना के क्रम में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग, इन चार युगों की एक चतुर्युगी (चोखरी) होती है, जिसका भोग.काल 43,20,000 वर्ष माना गया है। इनमें कलियुग का भोगकाल 4,32,000 वर्ष का होता है, जिसमें 2017 ई० पर्यत्न 5,117 वर्ष का भोग समाप्त हो चुका है। सम्पूर्ण भोग.काल 4,32,000 से 5,117 वर्ष घटा देने पर 4,26,883 वर्ष कलियुग का भोग.काल शेष बच जाता है। चतुर्युगी के भोग.काल 43,20,000 में से कलियुग की शेष अवधि 4,26,883 वर्ष मुक्त कर देने से 38,93,117 वर्ष शेष बचता है। भारतीय गणना के अनुसार यही वैवस्त मनवन्तर की चतुर्युगी का व्यतीत.काल होता है। वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु ने अपनी राजधानी अयोध्या में बनायी थी। इक्ष्वाकु के कई पुत्र हुए, जिनमें प्रथम पुत्र विकुक्षी ने सूर्यवंश की मूल शाखा अयोध्या.राज्य का शासन.सूत्र अपने हाथ में लिया, एवं द्वितीय पुत्र निमि, जो महत्त्वाकांक्षी था, नयी भूमी की खोज में (कोलम्बस की भाँति) पूर्व की ओर अग्रसर हुआ। उसी निमि के पुत्र मिथि हुए, जिसने पूर्वोत्तर भारत में सदानीरा नदी को पार कर मिथिला नगरी एवं जनपद की स्थापना की, जिसका वर्णन पौराणिक कथाओं के उद्धरणों के साथ अन्यत्र किया गया है तथा जिसकी सम्पुष्टि 'शतपथ ब्राह्मण' से भी होती है। उपर्युक्त काल. निर्णन भारतीय काल.गणना के आधार पर अंकित किया गया है, जिसको आधुनिक विद्वान् स्वीकार करने में हिचकिचाते है। इस विषय की वैज्ञानिक विवेचना की गयी है। परंतु इसमें संदेह नहीं है कि 'शतपथ ब्राह्मण' में वर्णित विदेध माथव (निमि पुत्र) द्वारा मिथिला नगरी एवं जनपद की स्थापना अति प्रचीन काल में हुई। हिमालय को जन्म देने वाले ज्वालामुखी के प्रकाट्य के हजारों वर्ष पीछे तक उस अंचल की भूमी मानव विकास के लिए उपर्युक्त नहीं रही होगी उसके ठंडा होने में भी सहस्त्रः वर्ष लग गये होंगे। तब कहीं वहां की दलदली भूमि वनस्पतियों के उगने के योग्य हुई होगी।

डॉ० ओल्डेन बर्ग ने अपने 'बुद्ध' नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ में अंकित किया है कि संहिता काल में आर्य. सभ्यता का केन्द्र भले ही सरस्वती एवं दृशद्वती नदियों के बीच का भू.भाग, जिसे मनु ने 'ब्रह्मवर्त की संज्ञा दी है, रहा हो किन्तु ब्राह्मण काल में उस संस्कृति का केन्द्र कुरू.पंचाल एवं उसके आस.पास के प्रदेशों में था, जिसे स्मृतिकार ने 'ब्रह्मर्षि.देश कहा है,। 'शतपथ ब्रांह्मण' से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उत्तर ब्राह्मण.काल में आर्यो ने पूर्व की ओर बढ़कर सदानीरा को पार किया और उसके पूर्व में विदेह भूमि अथवा मिथिला प्रदेश में आर्य संस्कृति का विकास, तथा प्रसार किया।

प्रोफेसर ववरण ने अपने 'इण्डियन स्टडीज' नामक ग्रन्थ में यह प्रतिपादन किया कि ब्राह्मण.धर्मो आर्यो के पूर्व की ओर अभियान की तीन अवस्थाएँ सिद्ध होती है। प्रथम अभियान में स्प्तसिन्धु (पंजाब) प्रदेश में उन्होने

अपना विस्तार.विकास किया और द्वितिय अभियान में वे सरस्वती नदी के किनारे तक पूर्व दिशा में बढ़ आये। तृतीय अभियान में आर्य राजा एवं ऋषि सदानीरा के किनारे तक पहुँच गए और उनको पार कर उसके पूर्वीय क्षेत्र में भी उन्होने अपनी सत्ता स्थापित कर ली। यह अभियान वैदिक.संहिता युग के निकट भविष्य में ब्रांह्मण. काल में हुआ था, ऐसा ब्राह्मण.ग्रन्थों से पता चलता है।

विदेह में मिथिला की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति

भारत की समय.समय पर यात्रा करने वाले फाहियान, हुएन.त्सं, संयुन, इत्सिंग, अदि चीनी यात्रियो; तिब्बती पर्यटक धर्मस्वाविद तथा कतिपय मुसलमान पर्यटकों ने भी अपना.अपना यात्रा.विर्तांत लिखा है। उनमें से हुएन्.त्सं, जिसने सम्राट हर्षवर्द्धन के शासन काल में कई वर्ष तक भारत में रहकर लगभग समपूर्ण उत्तर भारत की यात्रा की थी, के यात्रा.वृतान्त से पश्चाद्वर्ती लिच्छवि (वज्जि), तीरभूक्ति एवं विदेह.राज्य के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक मसाला प्राप्त होता है। मुसलमान आक्रामकों के आक्रमण के सम्बन्ध में मुसलिम इतिहास.लेखकों – फरिस्ता, अल बरूनी, अबुल फजल, एम० अब्दुल सजीम, गुलाम हुसेन खाँ आदि द्वारा लिखे गये इतिहास से भी मध्ययुगीन मिथिला से सम्बन्ध रखने वाली कुछ बातों का थोड़ा.बहुत पता लगता है।

मिथिला की जनता का प्रधान जीविका.कृषि था। शतपथ ब्राह्मण में कृषि कार्य का विवरण मिलता है। उसमें कर्षण (हल जोतना), वपन (बीज बोना), लुनन (उपज को काटकर एकत्रित करना), आदि का उल्लेख मिलता है।

उत्पन्न होने वाले खाद्यान्नों में ब्रीहि (धान, चावल), यव, मुद्ग एवं माष (मूँग और उड़द,दलहन), तिल, गोधूम (गेंहूँ) तथा मसूर (एक चिपटा द्विदलान्न) की प्रधानता थी (वाजसनेयी संहिता–18, सी० व्ही० वैद्यः हिस्ट्र ऑफ लिटरेचर –1, 185,) तैत्तिरीय संहिता (7, 2, 10, 2) में भिन्न.भिन्न धान्यों के बोने एवं परिपक्व उपज को काटने की ऋतुओं का भी उल्लेख किया गया है। साधारणतः वर्ष में दो फसलें उपजायी जाती थी। गंगा और यमुना के मध्य की जमीन अति उर्वरा थी। कृषि.कार्य की ओर जन.प्रवृति वर्द्धनशील थी। घोर जंगल के वृक्षों को निर्मूल कर वहाँ की भूमि कृषि के योग्य बनाई जाती थी। हल.कर्षण, बीज.वपन, उपज में उन्नति, वर्षा, पशु. धन की वृद्धि, ईति.भिति से त्राण तथा वन्य पशुओं एवं दस्युओं से रक्षा के हेतु ईश्वर से प्रार्थनाएँ की जाती थी । अति.वृष्टि एवं अनावृष्टि की चिन्ता कृषकों को चिन्तित करती थी। ओला एवं टिड्डियों के उत्पात से कुरु देश के निवासियों की अपार हानि तथा उनकी दुखः स्थिति का वर्णन किया गया है।

वाणिज्य एवं उद्योग की उन्नति हो रही थी व्यापार करने वाले वणिकों का वंश.परम्परागत एक विशेष वर्ग समाज में बन गया था, जिसकी रूपरेखा आज भी मिथिला में विद्यमान है। विदेह, अंग, कोशल, काशी आदि जनपदों के व्यवसायी वणिक समुद्र.मार्ग से भी व्यापार करते थे। बंगाल के बन्दरगाहों द्वारा उनका व्यापार. विनिमय समुद्र के पार देशों के साथ होता था। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में समुद्र.यात्रा का प्रायः वर्णन मिलता है, यथा–''यो वै संवत्सरस्य अचार च पर च वद'' (17.7; 8) । विदेह जनपद में बाहर से व्यापारी.गण व्यापार करने आते.जाते थे। सावस्ती (श्रावस्ती, उत्तर कोशल में गंगा.तट पर बसी हुइ एक प्राचीन नगरी, जो अब सहेत.महेत कहलाती है) से सौदागर बर्त्तन बेचने के लिए विदेह आया करते थे (वी० सी० लॉ–क्षत्रिय ट्राइब्स.129.30) । श्रावस्ती, वाराणसी, राजगृह, चम्पा (अंग देश की राजधनी) एवं विदेह के व्यापारी.गण विशेषतया सामुद्रिक यात्रा द्वारा व्यापार करते थे। उनके जहाजों पर व्यवसायी नर्तक.नर्तकियाँ, नट एवं वादकों के साथ चलने की भी चर्चा पायी जाती है (शतपथ ब्राह्मण.2, 3, 3, 5)। इस प्रकार की परिपाटी उस काल में प्रचलित दास.व्यवसाय का परिचायक प्रतीत होती है।

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक अवस्था तथा जन जीवन

कर्णाटों एवं ओइनवारों की शासन पद्धति, राज नीति, अर्थ नीति, समाज विकास नीति, निर्माण कार्य नीति, विद्या प्रचार एवं साहित्य संवर्द्धन आदि नीतियों में विशेषतया साम्य था, यद्यपि कर्णाटों का राज्य सार्वभौम स्वतन्त्र था, और ओइनवारों का क्रमानुसार दिल्ली, जौनपुर तथा पुनः दिल्ली के अधीन अर्द्ध स्वतन्त्र । उनके शासन के युग में मिथिला में मानव जीवन का चारित्रिक एवं वौद्धिक विकास तथा भारतीय संस्कृति की चरम उन्नति एवं प्रचार प्रसार प्राचीन काल की मिथिला के जनक एवं याज्ञवल्क्य युग के समान हो चला था। पर दोनो के ही शासनों का अन्त दुखान्त हुआ। उक्त दोनो राज कुलों के शासन के पश्चात् की मिथिला में अपेक्षाकृ

त संस्कृति के विकास का ह्यस तथा जनता की नैतिक एवं बौद्धिक उन्नति के पथ का धीरे धीरे अवरुद्ध होना परवर्तीकाल का इतिहास बताता है।

कर्णाट क्षत्रिय राजकुल के शासन के समकालीन साहित्य के अवलोकन से पता चलता है कि उस समय शासन राजतान्त्रिक था। राजा दयालु, प्रजाहित चिन्तक, उदार होते थे राजा का राज्य पर एकक्षत्र शासन होता था। राजा को उचित परामर्श देने के लिए मंत्री अथवा मंत्री परिषद् का अस्तित्व था, पर राजा की शक्ति एवं अधिकार सर्वोपरी होता था। राजा स्वयं प्रजा हित का कार्य करना अपना परम कर्त्तव्य समझता था। कर्णाट राज कुल के संस्थापक नान्यदेव से लेकर रामसिंह देव के राज काल तक की शासन व्यवस्था उपर्युक्त प्रकार की दृष्टिगत होती है। उन सबों के समय में शासन के भिन्न भिन्न विभागों की देखभाल के लिए पृथक.पृथक विभागों का निर्माण नहीं हुआ था।

रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् शक्तिसिंह देव के समय में प्रचलित विधान में परिवर्तन हुआ दीख पड़ता है। शक्तिसिंह के विषय में कहा जाता है कि वह क्रूर, स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश नृपति था। उसके आचरण से उबकर राज्य के सरदारों एवं मन्त्रियों ने राजा की निरंकुशता पर नियन्त्रण रखने के विचार से सात सदस्यों की एक मंत्री परिषद् का निर्माण किया। परिषद् में सात मन्त्रियों के लिए जाने से पता चलता है कि शासन कार्य को सात विभागों में विभक्त कर प्रत्येक को एक एक मन्त्री के अन्दर उसकी उचित देख रेख के हेतु रखने का प्रबन्ध किया गया था। इस प्रकार की शासन पद्धति का अस्तित्व मौर्य युग के चन्द्रगुप्त काल में था, इसका पता इतिहास देता है। पर कर्णाट काल में सर्व प्रथम राजा शक्तिसिंह देव के समय में ही इस प्रकार की परिषद का निर्माण राज्य के एक वरीय मन्त्री के नेतृत्व में हुआ । शक्तिसिंह देव हरिसिंह देव का पिता था। देवादित्य चण्डेश्वर का प्रपितामह तथा वीरेश्वर उसका पिता था। चण्डेश्वर स्वयं महामत्तक (प्रधान मन्त्री) था । उसके पिता वीरेश्वर, पितामह देवादित्य, पितृव्य, गणेश्वर सभी अपने अपने काल में महामत्तक के पद पर आसीन थे। देवादित्य का भ्राता भवादित्य 'राजवल्लभ' अथवा राजा का प्रिय पार्षद एडीकां था। गणेश्वर के पुत्र ठक्कुर रामदत्त ने अपने पिता के महामत्तक (प्रधानमंत्री) के पद पर आसीन रहने के काल में राज मन्त्री का पद प्राप्त किया था। इससे मन्त्रि मण्डल तथा शासन पर ठाकुर या ठक्कुर परिवार का कितना प्रभाव था, इसका पता चलता है। ठक्कुर परिवार के सभी सदस्य भू स्वामी होने के आतिरिक्त प्रतिभा सम्पन्न विविध विद्या विभूषित मनीषि प्रवर थे।

चण्डेश्वर कूट राजनीतिज्ञ था। उसका विचार समयानुकूल था। उसको विश्वास हो गया था कि देश में मुसलमानों का आधिपत्य पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका है। उसका हटना तथा हिन्दू साम्राज्य का पुनः स्थापन सम्भव नहीं है। अतः उसने अपने ग्रन्थों में राजनीति सम्बन्धी प्रचलित वैदिक नियमों में परिवर्तन करना उचित समझा। उसके मतानुसार राजा वह था, जो प्रजा की रक्षा करे, यथा–''प्रजा रक्षकों राजेत्यर्थ'' (राजनीति रत्नाकार 2) उसके विचार में सम्राट् अथवा राजा के लिए वैदिक मन्त्रों से सिंहासनारोहण के काल में अभिषिक्त होना आवश्यक नहीं रह गया था। गोपाल के 'राजनीति कामधेनु, तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थ, जिनमें राज्याभिषेक की पद्धति का निर्देश किया गया था, के दिन परिवर्तनशील समय के प्रभाव से उसके मतानुसार लद चुके थे। 'बृहस्पति नीति' के अनुसार विजेता राज्य का स्वामी माना जाता था। 'ऐतरेय' एवं 'शतपथ ब्राह्मण' के शान के दिन समाप्त हो चुके थे। हिन्दु राजाओं के ऊपर दिल्ली का सम्राट जो विधर्मी था, जिसका राज्याभिषेक वैदिक ऋचाओं के साथ नहीं हुआ था, पर उसका प्रभुत्व हिन्दू नरेशों पर अटल एवं अनिवार्य हो चुका था। उसके विचार में पुरानी पद्धतियों में आवश्यक्तानुसार परिवर्तन लाना समय की प्रेरणा और परमावश्यक था।

निष्कर्ष :

तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही मुसलमानों का आगमन पूर्वी भारत में विशेष रूप से आरम्भ हुआ था। उनके वास के कारण शनैः शनैः हिन्दु और मुसलमानी संस्कृति में मेलजोल होना शुरू हुआ। मुहर्रम के अवसर पर विशेष कर शीया संप्रदाय के मुसलमान बाँस की कमचियों एवं रंग बिरंगे कागजों के संयोग से मकबरे के आकार का मंडप बनाते हैं जिसके अन्दर इमाम हुसेन की कब्र (समाधि) की मानसिकता धारणा कर ली जाती है। इमाम हुसेन के अनुयायी भक्त मुसलमान उसकी अराधना करते हैं फिर उसे दफन कर देते है। तिरहुत (मिथिला) के मुसलमानों के ताजिया निर्माण पर भी वहां के मन्दिर निर्माण स्थापत्य कला का प्रभाव पड़ा और उनकी बनावट में धीरे धीरे परिवर्तन होने लगा। ताजिया मिथिला के प्रायः गाँव.गाँव में बनता है, और उनका

आकार प्रकार विशेषतया हिन्दू मन्दिरों के समान होता है, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है मुहर्रम के अवसर पर मुसलमानों के साथ हिन्दू भी आराधना में भाग लेते पाये जाते है।

देखा जाता था कि राजप्रसादों का निर्माण तभी होता था जब राजधानी का स्थानांतरण एक स्थान से दूसरे स्थान पर किया जाता था। कर्णाट राजकुल के संस्थापक राजा नान्यदेव ने नानपुरा से अपनी राजधानी का स्थानान्तरण सिमराओंगढ़ में किया था। वह स्थान चम्पारण जिले की सीमा के सन्निकट घोड़ा साहन एवं छौरादानों रेलवे स्टेशनों से थोड़ी दूरी पर नेपाल की तराई में है, जहाँ की राजधानी से नान्यदेव से लेकर हरिसिंह देव तक, कर्णाट कुल के नृपतियों ने मिथिला पर शासन किया था। सिमराओंगढ़ का भग्नावशेष एवं खण्डहर कर्णाट राजवंश के शासन का स्मारक है। वहाँ के राजमहल, शस्त्रागार तथा मन्दिरों के प्राप्त अवशेष से उस युग के भवन निर्माण विषयक कला का ज्ञातृत्व प्राप्त होता है। उन भवनों की आधार शिलाएँ सुन्दर, सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित थी। स्तम्भों पर अभिलेख उत्कीर्ण प्राप्त हुआ है। प्रस्तर सुन्दर ढंग से काटे गये थे और नक्काशी भी वहाँ की अति मनोहर है। ऊपर की दीवारें ईंट की बनी थी। ईंट भी अति सुन्दर है। बनावट उसी प्रकार की है जैसी तराई नेपाल के राजप्रसादों तथा देवालयों की हुआ करती है।

संदर्भ स्त्रोत :

1. शक्ति संगम तंत्र, वी० भट्टाचार्य सम्पादित, गायक वाट ओरिएन्टल सीरीज, जिल्द–104, सुंदरी खंड, भाग–3, श्लोक – 42, पृष्ठ सं० 69
2. झा, डॉ० गंगानाथ, केममोरेशन वाल्यूम, पृष्ठ सं० – 380
3. मणिपद्यम, मिथिलाक लोक संघर्ष, साहित्य संस्कृति, मिथिला समाद, कोलकाता रविवार, 07 नवम्बर 2010, पृष्ठ सं० – 05
4. ठाकुर डॉ० उपेन्द्र, हिस्ट्री ऑफ मिथिला, पृष्ठ सं० – 03
5. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐनिशिएन्ट इंडिया, 5 पृष्ठ सं० – 44
6. शर्मा. डॉ० राम प्रकाश, मिथिला का इतिहास, प्रागैतिहासिक युग पृष्ठ सं० – 07
7. शक्ति संगम तंत्र, वी० भट्टाचार्य सम्पादित, गायक वाट ओरिएन्टल सीरीज, जिल्द – 104, सुंदरी खंड, भाग – 3, श्लोक – 42, पृष्ठ सं० 69
8. मनु स्मृति – अध्याय – 2, श्लोक – 19
9. मनु०, अध्याय – 2, श्लोक – 21
10. शर्मा, डॉ० राम प्रकाश, ''मिथिला का इतिहास''
11. वैध, सी. एस०, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर –01, पृ०–101
12. मजूमदार, आर. सी. एंड पुसलकर, ए. डी., दि वैदिक एज. पृ०–420
13. राधाकृष्णन, रेलिजन एण्ड सोसाईटी – 141
14. ठाकुर, डॉ० उपेन्द्र, हिस्ट्री ऑफ मिथिला पृ०–78
15. ठाकुर चन्देश्वर, राजनीति रत्नाकर, पृ०–24
16. ग्रियर्सन, जिंगविस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, भाग–2, भाल्यूम–5, पृ०–4
17. मिश्र, जे० के०, हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर–1, पृ०–168
18. सेन, डी० सी०, हिस्ट्री ऑफ बेंगाली लैंग्वेज एन्ड लिटरेचर, 1, पृ०–14